अस्तित्ववाद : मानव के व्यक्तित्व और उसकी स्वतंत्रता

गोविंदभाई के. मुंधवा

अस्तित्वाद पाश्चात्य अवधारणा है जिसके प्रभाव से ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्रा प्रभावित है। दर्शनशास्त्रा भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। यूँ तो प्राचीलनकाल से आज तक दर्शनशास्त्रा में अस्तित्व की समस्याओं पर विचार किया जाता रहा है। उपनिषदों में यह समस्या मौजूद थी कि मनुष्य में वह तत्व क्या है जिसे उसका सच्चा अस्तित्व माना जा सकता है? पाश्चात्य जगत में भी अस्तित्व पर दार्शनिकगण विचार करते रहे हैं। दुनिया में कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो किसी न किसी मायने में अस्तित्वादी न कहा जा सकता हो। अभी तक दर्शन की जो समस्या रही है वह सत् ठमपदह से अधिक सम्भति पर, सामान्य से अधिक विशेष और तत्व से अधिक अस्तित्व पर जोर देते हैं। उसकी मुख्य समस्या यह है-''मैं ईसाई किस प्रकार बनूगाँ।'' नास्तिकवादी यहाँ पर ईसाई शब्द के स्थान पर प्रमाणिक सत्। uthentic being शब्द का प्रयोग कर सकता है। लेकिन अस्तित्ववादियों ने ज्ञान और व्याख्या के स्थान पर क्रिया। action और चुनाव Choice पर जोर दिया है और वह 'क्या' पर जोर न देकर कैसे पर जोर देता है।

अस्तित्ववाद की अवधारणा नवीन अवश्य है लेकिन इसका तार प्राचीन यूनानी दर्शन से भी जुड़ा हुआ है। जिसके आधार पर सुकरात भी अस्तित्ववादी ही ठहरते हैं। 'डॉ, राधाकृष्णन' के शब्दो में-''अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।'' कृष्णन पाश्चात्य दर्शन में अस्तित्ववाद जी की ही बात को आगे बढ़ाते हुए 'ब्लैकहम' ले लिखा है- ''यह प्रोटेस्टेंट अथवा स्टोइक प्रकार के व्यक्तिवादी की आधुनिक शब्दों में पुनः स्थापना प्रतीत होता है जो कि पुनर्जागरण युग के अनुभववादी व्यक्तिवाद अथवा आधुनिक उदारतावाद अथवा एपीक्यूरस के व्यक्तिवाद और रोम या मास्को तथा प्लेटो भी सार्वभौम व्यवस्था के विरूद्ध लड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। यह आदर्शों के संघर्ष में मानव अनुभव के आवश्यक सोपानों में से एक भी समकालीन पुनर्जागृति है। जिसे इतिहास ने अभी समाप्त नहीं किया है।''अस्तित्ववाद मानव केन्द्रित अवधारणा है क्योंकि अस्तित्ववाद मानव के व्यक्तित्व और उसकी स्वतंत्राता पर जोर देता है तथा पारम्परिक मूल्यों को नवीन दृष्टिकोण से देखता है। जिसकी वजह से मूल्यों के नवीन अर्थ सामने आते हैं। अस्तित्ववाद के अनुसार व्यक्ति अपने ही प्रयास से विकसित होता है, जो मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। अस्तित्ववाद केवल बौद्धिक व्यायाम और सैद्धान्तिक नहीं है। यह व्यवहारिक है क्योंकि इसमें क्रिया पर जोर दिया गया है। इसमें व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को महत्त्वपूर्ण माना गया है। अस्तिततववाद आदर्शवाद के विद्रोह के रूप में विकसित हुआ है क्योंकि अस्तित्ववाद प्रत्ययवाद के सिद्धान्त का खण्डन करता है।

प्रत्ययवाद की मूल मान्यता है कि मानव व्यक्तित्व किसी सार्वभौम सारतत्व की अभिव्यक्ति है जबकि अस्त्विवाद इसका खण्डन करता है और मानता है कि सारतत्व से पहले मानव का अस्तित्व होता है।

आज उत्तर-आधुनिकता और भूमण्डलीकरण के दौर में बूढ़े पूंजीवादी साम्राज्यवाद ने एक बार फिर प्रानीच मानदण्डों और स्थापनाओं पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिया है। फलतः मार्क्स का समष्टिवादी दर्शन भी संदेह के घेरे में है। ऐसी स्थिति में अब्बास और सलीम की दृष्टि यदि अस्तित्ववादी व्यक्तिवाद पर केन्द्रित है तो यह अस्वाभाविक भी नहीं है परन्तु जन-कल्याध के इस व्यक्ति केन्द्रित प्रयास से अस्तित्ववादियों के तथाकथित 'मनुष्य' का केतना कल्याण होगबा, यह बहस का विषय प्रत्ययवाद मानव और उसकी स्वतंत्राता को सारतत्व पर निर्भर मानता है लेकिन अस्तित्वादी ऐसी स्वतंत्राता को छद्म ठहराते हैं और व्यक्ति की मूल स्वतंत्राता को ही अहम् मानते हैं।

अस्तित्ववाद प्रकृतिवाद का भी खण्डन करता है क्योंकि प्रकृतिवाद व्यक्ति को प्रकृति के अधीन मानता है तथा उसकी स्वतन्त्राता प्रकृति पर निर्भर है। प्रकृति ही मानव को स्वतन्त्राता दे सकती है तथा क्षणभर में ले भी सकती है। जैसे- सूनामी और भूकम्प का आना और रेगिस्तान में सही समय पर वर्षा का होना। जीवन की स्वतंत्राता का लेना और देना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं लेकिन प्रकृतिवाद की मान्यताओं को अस्तित्ववाद खण्डित करता है। अस्तित्ववाद मानव को प्रकृति के अधीन नहीं मानता बल्कि प्रकृति को मानव के अधीन मानता है। मानव ही प्रकृति को अपने अस्तितव के द्वारा परिवर्तित कर सकता है। मानव ही को स्वतंत्राता दे सकता है। अस्तित्ववाद वैज्ञानिक दर्शन की खामियों को भी सिरे से खारिज कर देता है क्योंकि पाश्चात्य समाज में विज्ञान और प्रोघौगिकी की प्रगति के साथ-साथ नगरीकरण भी बढ़ा है। बड़े-बड़े नगरों में मानव का अस्तित्व भीड़ में खो गया। चलता-फिरता शहर मानव को तन्हा लगने लगा। मानव के जीवन का मशीनीकरण हो गया तथा विशालकाय मशीनों के सामने मानव का जीवन नगण्य हो गया।

मानव यंत्रों और मशानों का गुलाम बनकर रह गया है जिसकी वजह से हमारे पारम्परिक मूल्यों का विघटन हो रहा है, जिससे मानव का अमानवीकरण होता जा रहा है। अस्तित्ववाद इसी अमानवीकरण के विरूद्ध एक विद्रोह है। विज्ञान और प्रौघोगिकी के विकास का जो भयंकर रूप सामने आया है उसे देखकर साहित्यकारों और कलाकारों ने मानव समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा है। मानव के अस्तित्व के महत्त्व को फिर से स्थापित करने का प्रयास किया है। अस्तित्ववाद विज्ञान को खुली चुनौती देता है क्योंकि विज्ञान मूल्यहीन होता है। जबकि अस्तित्ववाद मानव अस्तित्व को पुनः विज्ञान के सामने स्थापित करने का प्रयास है और अपना नीवन मूल्यशास्त्रा बनाता है। आधुनिक समाज में नगरों में अंधभीड़ बढ़ने लगी है। इस बढ़ती हुई भीड़ की वजह से जीवन के प्रत्येक क्षेत्रा में मानव को संघर्ष करना पड़ता है तथा दो महायुद्धों के भयंकर परिणामों से, दर्शन से मानव की आस्था खत्म होने लगी। विज्ञान और औघौगीकरण के बढ़ते प्रभाव से मानव में निराशा बढ़ने लगी। मानव श्रम का मूल्य घटने लगा और जीवन निरूद्देश्य लगने लगा। ऐसी परिस्थिति में संवेदनशील मनुष्य की संवेदनाएँ भी मरने लगीं और मानव में निराशा घर करने लगी।

अस्तित्ववाद ही ऐसी परिस्थिति को दूर करने का उपाय बताता है और संघर्ष के लिए आस्था जगाता है। अस्तित्ववाद को यह जीवन असम्भव लगता है और वह अपने को असहाय महसूस करता है। वह अत्यधिक चिंता से व्याप्त हो जाता है। उसे भय लगता है कि वह कर्त्तव्यों को

पूरा नहीं कर सकेगा। उसे प्रतीत होता है कि वह जगत के सत्य को समझ नहीं पा रहा है। उसे डर है कि वह समय की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ लोग इसे असामान्य संवेदनाएं कह सकते हैं। अस्तित्ववादी जो व्यक्ति को अत्यधिक उत्तरदायी ठहराने लगते हैं, वे कर्त्तव्यबोध को इतना अधिक बढ़ा देते हैं कि मनुष्य उसकी चेतना से आक्रांत हो जाता है क्योंकि अस्तित्ववाद सामान्य व्यक्ति से अधिक गम्भीरतापूर्वक कर्त्तव्य पर विचार करते थे। वे भीड़ में, भीड़ के रूप में जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार नहीं थे। वे अपने अस्तित्व को अनुभव करने और उसे विकसित करने के लिए आग्रह करते थे। अस्तित्ववादी मानव व्यक्ति को केन्द्र में रखता है। इसके सामने ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत सभी दोयम दर्जे पर है तथा समाज का निर्माण व्यक्ति के लिए किया गाया है न कि व्यक्ति का समाज के लिए। मानव के विकास के लिए स्वतंत्राता अहम किरदार निभाती है। लकिन अगर समाज के नियम इसमें बाधा डालते हैं तो अस्तित्ववाद ऐसे समाज तथा समाज के नियमों का विरोध करता है। अस्तित्ववाद स्वतंत्राता के विकास के लिए अपने नये नियम तथा समाज को विकसित करने का पक्षधर है।

अस्तित्ववादी दार्शनिक 'कीर्केगार्द' ने कहा-''सत्य आत्मनिष्ठता है।'' जबकि विज्ञान वस्तुनिष्ठता को विशेष महत्त्व देता है। अस्तित्ववादवस्तुनिष्ठता का विरोध करता है और आत्मनिष्ठता और व्यक्तिगत अनुभव पर जोर देता है। इन व्यक्तिगत अनुभवों में संघर्ष, पीड़ा, घुटन अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि विरोध महत्त्वपूर्ण है, जो कि बहुधा नैतिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। अस्तित्ववाद मानव के व्यक्तित्व के विकास में सहायता करता है और उसके व्यक्तिगत अनुभव पीड़ा, संघर्ष, घुटन इत्यादि की व्याख्या करके उनमें अन्तर्निहित सत् तत्व के दर्शन कराता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सत् को जान सकता है। यह एक रचनात्मक अनुभव है। इसी से मानव मूल्य का सृजन होता है। यह सामने खड़ा होता है। सभी मानव मूल्य इसी अनुभव पर आधारित होते हैं। यही सच्ची स्वतन्त्राता है। अस्तित्ववाद केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि व्यक्ति का सम्बन्ध विश्व के साथ जोड़कर भी देखता है और परम्परागत मानव और विश्व के सम्बन्ध की व्याख्या को नकारता है। मानव को विश्व के नियमों के आधार पर चलना होता है लेकिन अस्तित्वाद के अनुसार मानव को किसी भी नियम के अधीन नहीं किया जा सकता चाहे वह विश्व का नियम हो, प्रकृति का नियम हो, राज्य का नियम हो या फिर समाज या विश्व का नियम हो। नियम कार्य की प्रामाणिकता नहीं दिखलाता उल्टे कार्य ही नियम को प्रामाणिक बनाता है। कलाकार, साहित्यकार की प्रामाणिकता उसकी कलात्मक क्रिया में है। किसी नियम का अनुगमन करने में नहीं है। अस्तित्ववाद न तो जगत और उसके नियमों को मानता है और नही उसके साथ बंधकर चलता है। बल्कि मानव महत्त्व पर जोर देता है। आज के जटिल संसार में सबसे बड़ी समस्या मनुष्य को किसी सिद्धांत का अनुयायी बनाना नहीं बल्कि उसे उसकी स्वतन्त्राता को बोध कराना है। ऐसा करने से आदान-प्रदान सहज हो जाता है। संसार में शान्ति केवल शान्ति-शान्ति चिल्लाने से नहीं हो सकती। शान्ति तो तभी होगी जबकि मनुष्य के अन्दर के संघर्षों को सुलझाया जाये। उसकी स्वंय अपने से शान्ति स्थापित की जाये। इस प्रकार अन्य दर्शनों की तुलना में अस्तिततववाद दर्शन अन्तर्द्वन्द्व की समस्याओं पर विशेष जोर देता है जबकि परम्परागत दर्शन इन समस्याओं पर विशेष जोर नहीं देते हैं। मानव की जगत से पृथक्ता और स्वयं अपने से पृथक्ता से ही दर्शन प्रारम्भ होता है। अस्तित्व और विचार को

अलग कर देने के बाद उत्पन्न हुई समस्या का सुलझाव विचारात्मक नहीं हो सकता। इसका सुलझाव तो कर्म और व्यवहार में ही हो सकता है। वास्तविक दर्शन सत् तत्वों का दर्शन नहीं बल्कि अस्तित्वों का दर्शन है। इस दर्शन का लक्ष्य जगत की व्याख्या, चिन्तन और परिवर्तन नहीं बल्कि उसमें भाग लेना है। यह सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होता है। इस दर्शन के कोई विशिष्ट लक्ष्य नहीं है क्योंकि मानव जाति के लक्ष्यों को अंतिम रूप से और वस्तुगत रूप से निश्चित नहीं किया जा सकता। मानव अस्तित्व व्यक्तिगत जीवन में प्राप्त किया जाता है और यह सतत् प्रक्रिया है। अस्तित्ववाद ऐतिहासिकता और विज्ञानवाद का खण्डन कराता है किन्तु इतिहास और वैज्ञानिक को व्यक्ति के रूप में महत्त्व देता है।

'जास्पर्स' को छोड़कर कोई भी अस्तित्ववादी दार्शनिक इतिहास और विज्ञान के विषय में अधिक नहीं कहता। मनुष्य के कार्य करने की स्थिति में वह दूसरों के लिए सत् प्रतीत होता है। इस सत् को वस्तुगत और सार्वभौम रूप दे दिया जाता है और मनुष्य स्वंय को संस्थाओं यन्त्राों और व्यवस्थाओं तथा चारों ओर उपस्थित वस्तुगत संसार में देखने लगता है किन्तु उसे पग-पग पर स्वंय को इनसे अलग भी करना पड़ता है इस अलगाव से समस्यायें उत्पन्न होती हैं। अस्तित्ववाद इन्हीं समस्याओं पर विचार करता है। अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक इस प्रकार हैं- 'नीत्शे', 'सोरेन', 'कीर्केगार्द' ,'कार्ल जास्पर्स', 'कामू' आदि। इन अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने अस्तित्ववाद के भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धांत उपस्थित किये हैं तथा इन दार्शनिकों की परस्पर मान्यताओं में भी अन्तर है। सार्त्रा अपने दर्शन को विशेष रूप से अस्तित्ववादी कहता है। जबकि मार्सेल अपने को अस्तित्ववादी मानने के लिए भी तैयार नहीं है। कीर्केगार्द और मार्सेल दोनों आत्मवादी विचारक हैं तथा कुछ अस्तित्ववादी आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक। कीर्केगार्द, जास्पर्स और मार्सेल ईश्वरवादी हैं। दूसरी ओर नीत्शे, हाइडैगर और सार्त्रा नास्तिक हैं। नीत्शे ने तो इसाई धर्म की भी अत्यन्त कटु आलोचना की है। मूलतः अस्तित्ववाद मानव केन्द्रित अवधारणा है, जो मानव को प्रत्येक क्षेत्रा में नायक के रूप में स्थापित करना चाहती है तथा मानव को सक्रिय बनाने की पक्षधर है।

सहायक ग्रंथ

1. Allen, E.L.(1972) Existentialism, Greenwood Press, London, 1972
2. Blackkhan, H.J.(1961). Six Existentialist thinkers, Routledge & Kegan Paul Ltd., London.
3. John, Macquarrie(1972). Existentialism, Westminster Press, London.
4. Soren,Kierkegaard(1984).Concluding and Unscientific Postscrilot, Prinception University Press, London.